

॥ श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ॥

अध्याय 13: क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोग

1/3 (श्लोक 1-6), रविवार, 25 फ़रवरी 2024

विवेचक: गीता प्रवीण रूपल जी शुक्ला

यूट्यूब लिंक: <https://youtu.be/lgpZEzKbCQ8>

निराकार का प्राकट्य

आज के शुभ विवेचन सत्र का आरम्भ पारम्परिक गीत श्रृङ्खला, दीप प्रज्वलन के साथ हुआ। हम पर भगवान की अतिशय मङ्गल कृपा है कि हमें भगवद्गीतसमझने और स्मरण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। यह अध्याय अति महत्वपूर्ण है। भगवान योगेश्वर श्रीकृष्ण भगवद्गीता के लिए कहते हैं-

"इति गुह्यतमं शास्त्रम्, इदमुक्तं मयाङ्घ्रि ।
एतद्बुद्ध्वा बुद्धिस्थितः कृतकृत्यश्च भारत ॥15.20॥"

अर्थात् गीता ज्ञान तो महत्वपूर्ण है ही, उसका सिद्धान्त उससे भी अधिक महत्वपूर्ण है। गीता के अर्थ की दृष्टि से कठिन अध्यायों में से एक यह क्षेत्र क्षेत्रज्ञ विभागयोग अध्याय है।

श्रीमद्भगवद्गीता अष्टादश अध्याय में तीन षटकों की संज्ञा दी गई है, शाङ्करभाष्य के अनुसार-

प्रथम षटक (अध्याय एक से छः), कर्म आधारित

द्वितीय षटक (अध्याय सात से बारह), उपासना प्रधान

तृतीय षटक (अध्याय तेरह से अष्टादश), ज्ञान प्रधान

षट्दर्शन(सांख्य, योग), न्याय, वैशेषिक, पूर्व मीमांसा, उत्तर मीमांसा

उत्तर मीमांसा को ही वेदान्त कहा जाता है। वेदान्त के भी कई प्रकार हैं- द्वैत (माधवाचार्य जी), अद्वैत, विशिष्ट द्वैत (रामानुजाचार्य जी), द्वैताद्वैत (आचार्य वल्लभाचार्य जी), अचिंत्य वेदान्त (निम्बाचार्य जी, कुछ लोग चैतन्य महाप्रभु को मानते हैं)।

वेदान्त में भी मुख्य रूप से प्रस्थानत्रयी लेते हैं। शास्त्र वह है जो हमें यह बतलाए कि हमें क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए? वेदान्त अर्थात् प्रस्थानत्रयी में पहला है ब्रह्मसूत्र, दूसरे उपनिषद और तीसरी है हमारी भगवद्गीता। प्रस्थान का मतलब है कि हम उस ब्रह्म तत्त्व को जानने के लिए और मोक्ष की प्राप्ति के लिए किस प्रकार प्रस्थान करेंगे?

ब्रह्मसूत्र को न्याय प्रस्थान, उपनिषद को श्रुति प्रस्थान और भगवद्गीता को स्मृति प्रस्थान कहते हैं। इन सब पर जिन-जिन आचार्य ने टीकाएँ और भाष्य लिखे, वे अलग-अलग मत बनते चले गए।

अद्वैतवाद के अनुसार केवल एक परम तत्त्व है। जीव ब्रह्म ही है।

एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति।

विशिष्टाद्वैत अर्थात् विशिष्ट अद्वैत में रामानुजाचार्य जी मानते हैं कि यह संसार ब्रह्म का शरीर रूप है या प्रकट रूप है।

द्वैतवाद में एक जीव और दूसरा परमात्मा दो तत्त्व हैं। जब भी वेदान्त कहा जाए उसका अर्थ होगा प्रस्थानत्रयी।

मोक्ष की प्राप्ति हेतु वेदों से चार महावाक्य उत्पन्न हुए। सबसे पहले ऋग्वेद से प्रज्ञानम् ब्रह्म अर्थात् प्रकृष्ट ज्ञान ही ब्रह्म है।

यजुर्वेद वेद से प्राप्त होता है- अहम् ब्रह्मास्मि।

सामवेद से प्राप्त होता है तत्त्वमसी।

वेद उपनिषद् का ही भाग हैं।

हमारे चारों महावाक्यों में से अधिक प्रसिद्धि तत्त्वमसी की है। यह हमें सामवेद से छान्दोग्य उपनिषद् से प्राप्त होता है। अथर्ववेद से अयमात्मा ब्रह्मा। माण्डूक्य उपनिषद् से।

प्रथम षट्क (अध्याय एक से छः) में त्वम अर्थात् अल्पज्ञ जीवादि का विवेचन हुआ है।

द्वितीय षट्क (अध्याय सात से बारह) में तत् अर्थात् सर्वज्ञ, चैतन्य परमात्मा का विवेचन हुआ है।

आठवें अध्याय में भगवान कहते हैं-

"अक्षरं(म्) ब्रह्म परमं(म्), स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते।

भूतभावोद्भवकरो, विसर्गः(ख) कर्मसंज्ञितः॥८.३॥"

भगवान ने पूरे ब्रह्म का वर्णन करके दे दिया है, अर्जुन के एक प्रश्न के उत्तर में।

तृतीय षट्क (अध्याय तेरह से अठारह) में असि का विवेचन हुआ है असि का अर्थ है अभेद।

अध्याय पन्द्रह में भगवान ने कहा है-

"ममैवांशो जीवलोके, जीवभूतः(स) सनातनः।

मनः(ष) षष्ठानीन्द्रियाणि, प्रकृतिस्थानि कर्षति॥१५.७॥"

भगवान कहते हैं कि जीव मेरा ही अंश है जो सनातन काल से विद्यमान है। पन्द्रहवें अध्याय में पूरा दर्शन आने का तात्पर्य यही है कि हम भगवान से भिन्न नहीं हैं।

फिर भगवान ने सोलहवें अध्याय में दैवीय और आसुरी गुणों के बारे में बताया। रूप आँखों का, रस जीभ का श्रेय है और मनुष्य इन विषयों में भोगते रहते हैं। न जाने हमारे कितने जन्म पहले हो चुके हैं और कितने और होने वाले हैं?

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं, पुनरपि जननी जठरे शयनम्।

इह संसारे बहुदुस्तारे, कृपयाऽपारे पाहि मुरारे।

भजगोविन्दं भजगोविन्दं, गोविन्दं भजमूढमते।

नामस्मरणादन्यमुपायं, नहि पश्यामो भवतरणे।"

संसार चक्र में तब तक फँसे रहेंगे जब तक इस अविद्या को दूर नहीं कर लेते, आत्म तत्त्व को जान नहीं लेते। हमें किसी और अन्य ब्रह्म तत्त्व को जानने की आवश्यकता ही नहीं है इसको यूँ कह सकते हैं जैसे कि हमने गले में कोई माला पहनी हुई है और

हम उसको अन्यत्र ढूँढ़ रहे हैं और इतने में हमारा कोई मित्र आकर हमें भान करवाता है कि वह तो आपके गले में ही है। इस प्रकार हमारी सारी पूजा, उपासना का उद्देश्य यही है कि हमें अज्ञान के आवरण को हटाना है और परम तत्त्व को, परमात्मा को, जिसके हम अंश हैं, को पहचानना है और यह जान लेना है कि वह और हम एक ही हैं। शाब्दिक रूप से हम कहते हैं कि मोक्ष की प्राप्ति करनी है परन्तु प्राप्ति नहीं करनी है, हमने स्वयं को जान लिया यही मोक्ष है। उदाहरणतया गीता कक्षा की चालीस मिनट के प्रतिदिन के अभ्यास से हम सबके आनन्द में यकायक बढ़ोतरी हो गई है। भगवान का स्वरूप आनन्द स्वरूप है और जितना हम भगवान के स्वरूप के निकट जाएँगे हम आनन्द की आभा से स्वयं को महका हुआ पाएँगे।

जितना हम पूजा-अर्चना, गीता का पाठ आदि करते हैं, अध्यात्म में स्वयं को रमाये रखते हैं उतना ही हमारे विकारों काम, क्रोध, मोह, लोभ आदि का नाश होता जाता है। जिस प्रकार पानी को साफ करने के लिए अशुद्धियों को दूर किया जाता है उसी प्रकार जब हमारे सभी विकारों का नाश हो जाएगा तो उस चैतन्य का स्वरूप हमारे अन्तःकरण में प्रतिबिम्बित होगा। हमें कुछ प्राप्त नहीं करना केवल अज्ञान का नाश करना है इसके लिए हमें गीता का अध्ययन, शास्त्रों का अध्ययन, भगवान की प्रार्थना करनी होगी। जैसे किसी गन्तव्य तक पहुँचने के लिए हमारा मार्ग कितना है और हमारी गति कितनी है? यही हमें भगवान के पथ पर चलने के लिए ध्यान रखना होगा।

तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में भी एक बात कही है। सारे कार्य सुख के लिए ही होते हैं। हमारा लक्ष्य है मोक्ष की प्राप्ति। हमें मार्ग की दूरी और गति दोनों पर ध्यान देना होगा और अब तो बड़ी ही भाग्य की बात है कि हम गीता परिवार से जुड़ गए। इसके कारण तुम्हारी गति में अवश्य ही थोड़ी वृद्धि तो हुई ही होगी। रामसुखदास जी महाराज ने कहा कि सभी को मोक्ष मिलना है। तब किसी ने पूछा कि कब मिलेगा तो वे कहते हैं पता नहीं क्योंकि सबकी गति और मार्ग की दूरी अलग-अलग है।

तेरहवें से लेकर अठारहवें अध्याय तक असि का चिन्तन किया गया है कि कैसे जीव और ब्रह्म अभेद है। अभेद बतलाने के लिए शास्त्रों में न्याय होता है। किसी श्लोक को हम तभी समझ पाएँगे जब उसके शब्दों का अर्थ हमें पता होगा और ब्रह्म अभेद है इसको समझने के लिए सबसे पहले हमें जीव अर्थात् क्षेत्र और ब्रह्म अर्थात् क्षेत्रज्ञ यह समझना होगा। इनके अभेद को समझने के लिए पहले इनके बीच भेद निर्माण कैसे हो रहा है? यह समझना होगा।

बारहवें अध्याय में अर्जुन पूछते हैं कि सगुण उपासक श्रेष्ठ हैं या निर्गुण निराकार की उपासना करने वाले? भगवान कहते हैं सगुण उपासक श्रेष्ठ हैं। भगवान आगे कहते हैं कि जो निर्गुण की उपासना करते हैं वे भी मुझे ही प्राप्त होते हैं। अब प्रश्न उठता है कि तो सगुण उपासक श्रेष्ठ कैसे हुए?

सगुण उपासक श्रेष्ठ इसलिए बतलाए हैं कि सगुण की उपासना करना आसान होता है जैसे रामलला की प्रतिष्ठा के दौरान भगवान राम का वह भव्य और मन को आनन्दित करने वाला स्वरूप सबकी आँखों के समक्ष विराजमान हो गया, हमारा मन टिक गया। निर्गुण की उपासना में दुविधा यह होती है कि हमें कोई बिन्दु, कोई केन्द्र, कोई आधार नहीं मिलता कि जिसका हम चिन्तन करें और सगुण उपासना में जैसे हमें कह दिया कि आँखें बन्द करके आधा घण्टा भगवान राम के भव्य स्वरूप का चिन्तन करना है और सगुण उपासना में जब हम भगवान का चिन्तन करें, उनके स्वरूप का चिन्तन करें तो पहले मुकुट से आरम्भ करें उसका सौन्दर्य देखें फिर भगवान की आँखें, भगवान के अधर, भगवान के गाल। हम इस प्रकार क्रमबद्ध तरीके से जब भगवान के सौन्दर्य का चिन्तन करेंगे तो मन को अवकाश ही नहीं होगा भाग जाने का। गीता परिवार में बाल संस्कार केन्द्र में बालकों को इसी प्रकार ध्यान करना सिखाया जाता है कि वह दस या पन्द्रह मिनट इसी प्रकार भगवान को चिन्तन में लाएँ।

भगवान ने बारहवें अध्याय में सगुण भक्ति का पूरा भक्ति योग कह दिया। अब तेरहवें अध्याय में भगवान निर्गुण निराकार उपासकों के लिए पूरे विवेचन को कहने जा रहे हैं। क्षेत्र क्षेत्रज्ञ विभाग योग में क्षेत्र का अर्थ है जीव और क्षेत्रज्ञ का अर्थ है जीव को जानने वाला अर्थात् ईश्वर।

इदं(म्) शरीरं(ङ्) कौन्तेय, क्षेत्रमित्यभिधीयते। एतद्यो वेत्ति तं(म्) प्राहुः, क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः॥13.1॥

श्रीभगवान् बोले - हे कुन्तीपुत्र अर्जुन ! 'यह' - रूप से कहे जाने वाले शरीर को 'क्षेत्र' - इस नाम से कहते हैं (और) इस क्षेत्र को जो जानता है, उसको ज्ञानी लोग 'क्षेत्रज्ञ' इस नाम से कहते हैं।

विवेचन:- अभिधीय का अर्थ होता है जानना। श्रीभगवान् कहते हैं कि कुन्ती पुत्र अर्जुन यह शरीर क्षेत्र कहा जाता है। इस क्षेत्र को जानने वाले को क्षेत्रज्ञ कहते हैं। एक व्यक्ति कार से जा रहा होता है तो वह विचार करता है कि मानो यह कार क्षेत्र है और उसको चलाने वाला क्षेत्रज्ञ, जिसके बिना गन्तव्य तक नहीं पहुँचा जा सकता। यह व्यष्टि की बात है। भाषा में व्यष्टि एकवचन के लिए और समष्टि बहुवचन के लिए होता है। जैसे जङ्गल में पेड़ व्यष्टि और पूरा जङ्गल समष्टि है। हमें सभी के कल्याण के लिए चिन्तन करना चाहिए-

सर्वभूत हिते रताः।

संस्थाओं की बात करें तो, जैसे किसी खेत का क्षेत्रज्ञ किसान, शैक्षणिक संस्थाओं के क्षेत्रज्ञ, अस्पतालों के क्षेत्रज्ञ आदि बहुत हो सकते हैं, परन्तु जब हम समष्टि की बात करें, पूरे विश्व को एक क्षेत्र मानें तो क्षेत्रज्ञ परमात्मा के अतिरिक्त और कोई हो ही नहीं सकता। सामान्य दृष्टि से जो श्रेष्ठ है वह क्षेत्रज्ञ हुआ। जैसे रक्त सञ्चारण के लिए हृदय, परन्तु हृदय भी मस्तिष्क से सङ्केत ग्रहण करके रक्त आपूर्ति करता है, तो क्षेत्रज्ञ हुआ मस्तिष्क, परन्तु मस्तिष्क में विचार कहाँ से आए तो क्षेत्रज्ञ है चैतन्य जीवात्मा जो हमारे भीतर बैठा हुआ है। जीवात्मा हमारे मस्तिष्क को सन्देश देता है और जब जीवात्मा और ईश्वर में देखेंगे तो क्षेत्रज्ञ हुए ईश्वर। जब ईश्वर और परमात्मा में देखेंगे तो परमात्मा क्षेत्रज्ञ हो जाते हैं। परमात्मा ही सर्वोच्च क्षेत्रज्ञ हो सकते हैं।

सबसे छोटा क्षेत्र हो सकता है परमाणु। परमात्मा से सर्वश्रेष्ठ क्षेत्रज्ञ कोई नहीं हो सकता। भगवान् कहते हैं कि शरीर को क्षेत्र मानो और उसको जानने वाले को क्षेत्रज्ञ। हम प्रश्न कर सकते हैं कि शरीर को तो डॉक्टर भी जानते हैं, परन्तु व्याख्या नहीं कर सकते। हमारे शरीर में होने वाली घटनाओं को क्रमबद्ध तरीके से चलाने के लिए जो उत्तरदायी है, वह है क्षेत्रज्ञ। व्यष्टि में हो सकता है डॉक्टर क्षेत्रज्ञ हों, परन्तु समष्टि में वह परमात्मा ही क्षेत्रज्ञ है। परमात्मा सदैव हमारी चिन्ता करने के लिए हमारे साथ हैं।

**अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ।।**

भगवान् कहते हैं जो मेरे परायण हो जाते हैं फिर उनकी चिन्ता मैं करता हूँ।

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोय।

भगवान् कहते हैं उनके लिए मैं अप्राप्त की प्राप्ति और प्राप्त की रक्षा करता हूँ।

13.2

क्षेत्रज्ञं(ञ्) चापि मां(म्) विद्धि, सर्वक्षेत्रेषु भारत। क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं(म्), यत्तज्ज्ञानं(म्) मतं(म्) मम॥13.2॥

हे भरतवंशोद्भव अर्जुन ! (तू) सम्पूर्ण क्षेत्रों में क्षेत्रज्ञ मुझे ही समझ और क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का जो ज्ञान है, वही मेरे मत में ज्ञान है।

विवेचन:- भगवान् क्षेत्रज्ञ के स्वरूप के बारे में बताने जा रहे हैं। श्रीभगवान् कहते हैं कि सभी क्षेत्रों में क्षेत्रज्ञ मुझे जानो। भगवान् कहते हैं कि क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ को अलग-अलग जानना ही ज्ञान है।

तत्क्षेत्रं(म्) यच्च यादृक्च, यद्विकारि यतश्च यत्। स च यो यत्प्रभावश्च, तत्समासेन मे शृणु॥13.3॥

वह क्षेत्र जो है और जैसा है तथा जिन विकारों वाला है और जिससे जो (पैदा हुआ है) तथा वह क्षेत्रज्ञ (भी) जो है और जिस प्रभाव वाला है, वह सब संक्षेप में मुझ से सुन।

विवेचन:- भगवान कहते हैं कि यह सब संक्षेप में ही समझो क्योंकि साधकों के लिए भावना प्रधान है, ज्ञान नहीं, जैसे बहुत अधिक सङ्ख्या में नाम जप करने वाले से अधिक श्रेष्ठ भावपूर्ण रहने वाले साधक हैं। यह बहुत महत्वपूर्ण है कि हम सिर्फ क्रिया से ही कार्य न करें, जैसे गीता पाठ, एकादशी का उपवास, अपनी पूजा पद्धति आदि वरन् अपनी पूर्ण भावना लगाकर यह सब कार्य करें।

इसे एक कहानी से स्पष्ट किया कि एक व्यक्ति गङ्गा में डूबती हुई पत्नी को बचाने के लिए सबसे आग्रह करता है और कहता है कि महादेव का वचन है कि जिसने एक भी पाप नहीं किया हो वह ही इसे निकाल सकेगा तो सब लोग पीछे हट जाते हैं। एक बारह वर्ष का बालक आता है और वह कहता है कि मैं निकाल देता हूँ। तो वही शर्त रखते हैं कि क्या तुमने एक भी पाप नहीं किया। वह बालक कहता है कि गङ्गा में डूबकी लगाते ही पाप तो सब वैसे ही धुल जाने वाले हैं फिर चिन्ता क्या? यह बात सिर्फ भावना की है, श्रद्धा की है, विश्वास की है और उसी की प्रधानता है, इस कृष्णपथ पर।

प्रधानता भावना की है परन्तु कर्म का भी अपना फल है, जैसे महर्षि वाल्मीकि बन गए मरा-मरा कहते कहते।

सत्ता तीन प्रकार की कही गई है:-

परमार्थिक सत्ता:- ब्रह्म की सत्ता

व्यवहारिक सत्ता:- जगत का सारा व्यवहार। जिसका नाश केवल ब्रह्म के ज्ञान से होगा।

प्रातिभासिक सत्ता:- केवल आभासी। जैसे रस्सी को सर्प समझकर भयभीत होना, सीप को चाँदी समझना, मरुमरीचिका, अर्थात् रेत में जल का आभास।

विकार का अर्थ है परिणाम जो परिवर्तन के कारण होता है। यह दो प्रकार का हो सकता है- सम और असम। जैसे प्रकृति में होने वाले परिवर्तन और व्यवहारिक परिवर्तन।

ऋषिभिर्बहुधा गीतं(ञ्), छन्दोभिर्विविधैः(फ्) पृथक्। ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव, हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः॥13.4॥

यह क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का तत्त्व- ऋषियों के द्वारा बहुत विस्तार से कहा गया है (तथा) वेदों की ऋचाओं द्वारा बहुत प्रकार से विभागपूर्वक (कहा गया है) और युक्ति युक्त (एवं) निश्चित किये हुए ब्रह्मसूत्र के पदों द्वारा भी (कहा गया है)।

विवेचन:- छन्द वेद का भी पर्यायवाची है। यह क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ वेद की ऋचाओं द्वारा अलग प्रकार से बहुत बार कहा गया है। ब्रह्मसूत्र के निश्चित पदों द्वारा भी यह बार-बार कहा गया है।

ब्रह्मसूत्र के लिए दो विशेषणों का प्रयोग हुआ है। पहले बताया जा चुका है कि वेदान्त में प्रस्थानत्रयी है जिसमें ब्रह्मसूत्र, उपनिषद् और श्रीमद् भगवद्गीता है, तो ब्रह्मसूत्र मुख्य हो गया। गीता वेदान्त का ही शास्त्र है, इसलिए यहाँ ब्रह्म सूत्र कहा गया है। ब्रह्मसूत्र में हमारे हर प्रश्न का समाधान दिया गया है। बोध से, न्याय से, वैशेषिक से, साङ्ख्य से आदि। सभी मतों से चर्चा को ब्रह्मसूत्र में दिया गया है और उसके बाद ही वेदान्त के मत का प्रतिपादन किया जाता है। भगवान कहते हैं कि इसे बहुत बार

बतलाया गया है, मात्र ऐसा ही नहीं है, इसे बहुत प्रकार से समझाया भी गया है। गीता की बहुत अधिक सङ्ख्या में प्रमाणिक टीकाएँ हैं। ऐसा इसलिए है कि भगवान ने सात सौ श्लोक कहे, परन्तु अलग-अलग लोगों ने उसे अलग-अलग प्रकार से समझा है और उसे शब्दों में अर्पित किया है। यह समझ का ही परिणाम था कि हमारे इतने सारे मत बनते गए।

शिव के उपासक - शैव

विष्णु की उपासना करने वाले - वैष्णव

देवी की उपासना करने वाले - शाक्त

इसी प्रकार ब्रह्मसूत्र के उपनिषदों को, गीता को लोगों ने इतनी प्रकार से समझा कि, अद्वैत, द्वैतवाद, विशिष्टाद्वैत आदि अलग-अलग वेदान्त बन गए। हमारे सनातन धर्म में इतना स्वातन्त्र्य हम सबको हमेशा रहा ही है, जिसका जो मन है वह मत चुन लो, गन्तव्य सबका एक होना चाहिए। सबकी गति, सबका उद्देश्य, सबका लक्ष्य एक होना चाहिए। भिन्न मार्गों से चलकर भी हमें एक ब्रह्म तक ही पहुँचना है।

बालकाण्ड में तुलसीदास जी कहते हैं-

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना।
कर बिनु करम करइ बिधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी।
बिनु बानी बकता बड़ जोगी॥

उपनिषदों में उसके लिए कहा गया है-

यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षुन्धि पश्यति।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥

ब्रह्म की शक्ति से हम सब देख पा रहे हैं, कार्य कर पा रहे हैं, स्पर्श कर पा रहे हैं। ब्रह्म के स्वरूप का इस प्रकार से उपनिषदों में वर्णन किया गया है। ब्रह्म तो एक ही है, परन्तु उसके स्वरूप की अलग-अलग प्रकार से व्याख्याएँ की गई हैं। भगवान ने कहा कि इसको अनेक बार अनेकानेक प्रकार से कहा गया है।

13.5

महाभूतान्यहङ्कारो, बुद्धिरव्यक्तमेव च।
इन्द्रियाणि दशैकं(ञ्) च, पञ्च चेन्द्रियगोचराः॥13.5॥

मूल प्रकृति और समष्टि बुद्धि (महत्तत्त्व), समष्टि अहंकार, पाँच महाभूत और दस इन्द्रियाँ, एक मन तथा पाँचों इन्द्रियों के पाँच विषय - (यह चौबीस तत्त्वों वाला क्षेत्र है)।

विवेचन:- हमारे शरीर अर्थात् क्षेत्र का स्वरूप क्या है? प्रकृति क्या है?

पञ्च महाभूत और अहङ्कार, बुद्धि, प्रकृति, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, उनके विषय सहित हमारा शरीर चौबीस तत्त्वों से मिलकर बना होता है।

हमारे श्रोत्र का विषय है शब्द, त्वचा का विषय है स्पर्श, चक्षुओं का विषय है रूप, जिह्वा का विषय है रस और घ्राणों का विषय है सुगन्ध। ऐसे पाँच इन्द्रियों के पाँच विषय भी हैं।

13.6

इच्छा द्वेषः(स) सुखं(न) दुःखं(म), सङ्घातश्चेतना धृतिः। एतत्क्षेत्रं(म) समासेन, सविकारमुदाहृतम्॥13.6॥

इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, संघात (शरीर), चेतना (प्राणशक्ति) (और) धृति - इन विकारों सहित यह क्षेत्र संक्षेप से कहा गया है।

विवेचन:- यहाँ धृति का अर्थ है धारण करने की शक्ति। शरीर चौबीस तत्त्वों वाला है और उसके विकार हैं इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख आदि। इन विकारों सहित क्षेत्र अर्थात् शरीर का वर्णन किया गया। इसी के साथ हरि नाम सङ्कीर्तन के बाद प्रश्न-उत्तर सत्र आरम्भ हुआ।

प्रश्नोत्तर सत्र:-

प्रश्नकर्ता:- नरेन्द्र व्यास भैया

प्रश्न:- परमेश्वर (परमात्मा) और ईश्वर में क्या भेद है?

उत्तर:- परमात्मा निर्विकार होते हैं। उनमें कोई गुण नहीं होते हैं। जिन्हें हम "ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं" कहते हैं, लेकिन जब हम उन्हें कोई रूप दे देते हैं, जैसे राम जी, कृष्ण जी, दुर्गा जी तो जब स्वरूप आ जाता है तो वह ईश्वर हो जाते हैं। परब्रह्म तत्त्व निर्गुण, निराकार होता है। एक ही भेद है वो स्वरूप का है। जब स्वरूप आ जाता है तो अविद्या आ जाती है जिसके फलस्वरूप हमें आकार दिखाई देता है। ईश्वर का सम्बोधन किसी परमज्ञानी, तत्त्व ज्ञानी महापुरुष के लिए भी किया जा सकता है, किन्तु परमात्मा का सम्बोधन मात्र परमात्मा के लिए ही किया जा सकता है।

प्रश्नकर्ता:- नरेन्द्र व्यास भैया

प्रश्न:- आत्मा और जीवात्मा में क्या भेद है?

उत्तर:- आत्मा और जीवात्मा एक ही है। जब आत्मा किसी शरीर में प्रवेश करती है तो वह जीवात्मा कहलाती है। जब वह एक शरीर से निकल कर दूसरे शरीर में जाती है तो उस समय के लिए वह आत्मा कहलाती है।

प्रश्नकर्ता:- अरुण कुमार पाण्डे भैया

प्रश्न:- कभी-कभी क्रोध आ जाता है। उस पर नियन्त्रण के लिए क्या करें?

उत्तर:- कामना, लोभ और अहङ्कार अकेले आते हैं किन्तु क्रोध अकेले नहीं आता है। जब कामना, लोभ या अहङ्कार में विघ्न आता है तब ही क्रोध आता है। आपको आपके क्रोध का स्रोत जानना होगा। किसी से कोई अपेक्षा नहीं करनी चाहिए। दूसरे का कर्तव्य आपका अधिकार नहीं हो सकता है।

प्रश्नकर्ता:- रेणु टण्डन दीदी

प्रश्न:- इस अध्याय का प्रारम्भ अर्जुन के श्लोक से हुआ है क्या?

उत्तर:- इस अध्याय के प्रथम श्लोक जिसकी आप बात कर रही हैं उसे स्वामी जी ने क्षेपक माना है। गीता परिवार ने सात सौ श्लोक की गीता को ही मान्य माना है। इस्कॉन आदि में सात सौ एक श्लोक की गीता को मान्य मान कर अर्जुन के द्वारा एक श्लोक कहने की बात कही गई है।

प्रश्नकर्ता:- नीलम दीदी

प्रश्न:- मोक्ष क्या है?

उत्तर:- बार-बार जन्म लेना जीवात्मा की दुर्गति है और आत्मा को जन्म और मरण के चक्कर से छुड़ा देना मोक्ष है। एक मात्र मनुष्य योनि कर्म योनि है। शेष तिरियासी लाख निन्यानवे हजार नौ सौ निन्यानवे योनियाँ भोग योनियाँ हैं इसलिए मनुष्य जन्म को मोक्ष का द्वार कहा गया है।

बड़े भाग मनुष्य तन पावा।

सुर दुर्लभ सब ग्रन्थहि गावा।

अर्थात् मनुष्य जन्म देवताओं को भी दुर्लभ है।

प्रश्नकर्ता:- डॉ के. एल. राव भैया

प्रश्न:- सनातन, हिन्दू और हिन्दुत्व में क्या अन्तर है?

उत्तर:- सनातन और हिन्दू एक ही हैं। सनातन की विचारधारा को हिन्दुत्व कहते हैं।

प्रश्नकर्ता:- अशोक भैया

प्रश्न:- क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ क्या है?

उत्तर:- जो जड़ है वह क्षेत्र और जो चेतन है वो क्षेत्रज्ञ कहलाता है।

प्रश्नकर्ता:- रामकुमार भैया

प्रश्न:- वेद और वेदान्त में क्या अन्तर है?

उत्तर:- वेदों की जिन ऋचाओं को ऋषियों ने उपनिषदों के रूप में कहा और उपनिषद के सिद्धान्तों के रूप में प्रतिपादित किया उनको वेदान्त कहा गया।

प्रश्नकर्ता:- रामकुमार भैया

प्रश्न:- अपने मन और भावों को किस प्रकार शुद्ध करें?

उत्तर:- अधिकाधिक सत्सङ्ग करके और सात्त्विकता से जीवन यापन करके आप अपने मन और भावों को शुद्ध कर सकते हो।

प्रश्नकर्ता:- सुनीता दीदी

प्रश्न:- पितरों को तर्पण और पूजा आदि का क्या महत्त्व है?

उत्तर:- स्वर्ग लोक से पहले पितृ लोक होता है। यदि हमारे पितृ वहाँ हैं तो वहाँ पर उन्हें भोग आदि हमारे द्वारा मिलता है, यदि वे किसी अच्छी योनी में हैं या बुरी योनी में हैं तो भी उन्हें हमारे द्वारा किया गया तर्पण और भोग पूजा आदि मिलता है, इस पर हमारे पितृ प्रसन्न हो कर आशीर्वाद देते हैं और बुरी योनियों से अच्छी योनियों में उनका गमन होता है।



हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

<https://vivechan.learngeeta.com/feedback/>

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!

हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !

संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!

आइये हम सब गीता परिवार के इस ध्येय से जुड़ जायें, और अपने इष्ट-मित्र -परिचितों को गीता कक्षा का उपहार दें।

<https://gift.learngeeta.com/>

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

<https://vivechan.learngeeta.com/>

॥ गीता पढ़े, पढ़ाये, जीवन में लाये ॥

॥ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥